Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डा रामविलास शर्मा व्यवहारिक समीक्षा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

डा. राजेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य हिन्दी विभाग,
मर्यादा देवी कन्या पी.जी. कालेज,
बिरगापुर, हनुमानगंज, प्रयागराज।

शोधसार

भारतेन्दु नाम लेने मात्र से ही आम हिन्दी पाठक के मन मे एक मोटी–मोटी अवधारणा बनने लगती है वो अवधारणा है– आधुनिक काल की, हिन्दी गद्य साहित्य के विकास की, खड़ी बोली के प्रारंभ की व हिन्दी को अपनी अलग पहचान पाने के भ्रुरूआत की। वैसे तो यह अवधारणा काफी हद तक ठीक ही है परन्तु यदि वास्तव में भारतेन्दु की गहराई मे जाने का कोई पाठक प्रयास करे तो उसे इससे सम्बन्धित कई बाते मिलेंगी– जो एक प्रकार से वास्तव में आधुनिकता के लिए, तत्कालीन परिस्थितियों में परिवर्तन के लिए मानो वीणा उठाये तैयार थे। भाशा को चाहे उसके वास्तविक स्वरूप की पहचान दिलवाने की बात हो, या एक बहुत बड़े समुदाय (हिन्दी भाशी जनता) जो अनेक बोलियों व उपबोलियों में बिखरे पड़े थे– उनको एक सूत्र में बांधने की बात हो, चाहे उस सूत्र में बांधने के पीछे राश्ट्रियता की भावना व साम्राज्यवाद के विरोध की बात हो, चाहे हिन्दी भाशी जनता को रूढ़िवाद से अलग करके अंधवि वास, आडम्बर, कर्मकाण्ड, अज्ञानता मूलक कुतर्को से दूर करने की बात हो, चाहे नयी सोच, नये विचार, नया जीवन, नयी चेतना, नये कर्म से संलग्न होकर चलने की बात हो सर्वत्र भारतेन्दु जी का प्रयास सराहनीय रहा है। अन्य बातों पर विचार करने से पहले आव यक एक बात कह देना जरूरी समझता हूँ जो जहन में बहुत दिनों से कौंध रही थी कि भारतेन्दु के सम्बन्ध में– ''जथा नामों तथा कर्मो'' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही है– यद्यपि आज के समय में इसे सबके ऊपर लागू नहीं किया जा सकता पर भारतेन्दु के ऊपर लागू हो रही है। यदि हम भारतेन्दु भाब्द की गहराई में जाये तो यह दो भाब्दो से मिलकर बना है 'भारत व इन्दु' अर्थात भारत के चंद्रमा। मेरी समझ में एक ऐसा चन्द्रमा जो भारत की जनता को जो किसी ऐसी व्यापक भाशा के न होने से जिससे सबको एक सूत्र में बांधा जा सके जिससे हिन्दी भाशी समझ सके तथा एक ही भाशा में वो अपनी विचारों का आदान–प्रदान कर सके एक प्रकार से भाशिक या यों कहे कि वैचारिक रूप से बिखरे भारत को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य उन्होंने किया या फिर यों कहें कि– घने अधेंरे में या गुलामी की जंजीर में जकड़े भारतवासियों को अपनी चांदनी से जो मार्ग दिखलाया वो उनके भारत के चन्द्रमा होने की उक्ति को चरितार्थ करती है।

वैसे तो भारतेन्दु व उनके कार्यो को लेकर जिनका माध्यम उनका मंडल व अनेकों पत्र–पत्रिकाएं थी, के बारे में कई प्रकार के मत दिये गये पर हमें अधिक विस्तार में न जाकर आचार्य रामचंद्र भाुक्ल व डॉ0 रामविलास भार्मा के परिप्रेक्ष्य में भारतेन्दु से सम्बन्धित मतों का ही मूल्यांकल करना है। जहां तक आचार्य रामचन्द्र भाुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहितय के इतिहास' में भारतेन्दु से सम्बन्धित मत दिये है वो मुख्यतया हिन्दी भाशा व गद्य की सेवा से सम्बन्धित तर्को तक ही सीमित है जिसमें उन्होंने दे ाभक्ति का प्रचार तथा आडम्बर व अंधवि वासों के विरोध तथा जनता में नवचेतना, नवजागृति पैदा करने तक की बात कही है। परन्तु डॉ0 रामविलास भार्मा के भारतेन्दु से सम्बन्धित विचारों या मतों को देखे तो वो अत्यन्त व्यापक, विराट व वि ाल क्षेत्र को स्प र्ा करती हुई दिखती है जिसे हम डॉ0 भार्मा की भारतेन्दु पर लिखी गई तीन पुस्तकों को देखकर के समझ सकतें है। जहां तक डॉ0 भार्मा के भारतेन्दु से सम्बन्धित मोटा–मोटा खांका देखने को मिलता है वो है– भारतेन्दु को व उनके युग को नवजागरण का दूसरा चरण मानना, अपनी हिन्दी भाशी जनता की जातीय अस्मिता के लिए संघर्श तथा उसके लिए प्रेरणा देना, सामंतवाद व साम्राज्यवाद का विरोध करना, मनुश्य की एकता, समानता व भाईचारे की भावना जगाकर भारत की जनता में इस बात का एहसास कराना कि हमारा एक राश्ट्र है, एक जातीय अस्मिता है, हम एक दूसरे के भाई है, हमारे ऊपर हो रहे अत्याचार का कारण हमारे बिखरे होने से है, संग्रहित एकत्रित व संगठित होकर हम अपने हको की मांग कर सकते है, गुलामी से छुटकारा पा सकते है, तथा एक होकर हम अपने दे ा ही नहीं वि व में भी अपना परचम लहरा सकते है।

इस प्रकार से हम देखे तो डॉ0 भार्मा ने तो भारतेन्दु को साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैचारिक, सांस्कृतिक इन सबके नवउत्थान से जोड़ दिया है यद्यपि आज कई आलोंचकों द्वारा इसे किसी एक के प्रति अति श्रद्धा, व अतिव्याप्तता कहकर आलोचना की गयी है परन्तु वास्तव में देखे तो डॉ0 भार्मा की स्थापनाओं को झुठलाने का अर्थ हुआ भारतीय सांस्कृतिक एकता के उत्थान व विकासात्मक इतिहास की झुंठला देना– क्योंकि डॉ0 भार्मा भारतेन्दु में यही सब देखने व दिखाने का प्रयास करतें है, अतः आज उनकी स्थापनाओं पर नये व व्यापक तौर से गौर करनें की आव यकता है न कि उसको झुंठलाने की।

जैसे कि ऊपर व्याख्या हो चुकी है कि आचार्य रामचन्द्र भाुक्ल ने भारतेन्दु को हिन्दी गद्य के नवोन्मेशकर्ता के रूप में स्वीकार किया है तथा महत्व इस बात को दिया है कि उन्होंने हिन्दी के एक व्यवस्थित रूप देकर एक वि ाल क्षेत्र की जनता को आपसी प्रेम व सद्भाव के सूत्र में बांधने का सफलतम् प्रयास किया है– ''भारतेन्दु हरि चन्द्र का प्रभाव भाशा और साहित्य दोनों पर बड़ा गहरा पड़ा उन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाशा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चतला, मधुर स्वच्छ रूप दिया उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नये मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया ... और वे वर्तमान हिन्दी गद्य के प्रवर्तक माने गये।''[1]''भाशा का निखरा हुआ ि ाश्ट सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ भारतेन्दु हरि चन्द्र ने पद्य की ब्रज भाशा का भी बहुत कुछ संस्कार किया। पुराने पड़े हुए भाब्दों को हटाकर काव्य भाशा में भी वे बहुत कुछ चलता पन और सफाई लाए।''[2]इस प्रकार भाुक्ल जी ने भारतेन्दु को हिन्दी गद्य व पद्य दोनों के संस्कारकर्ता के रूप में तथा उसमें पुराने घिस चुके अटपटे लगने वाले भाब्दों को हटाकर नये भाब्दों का समावे ा करके उसके आम बोल–चाल में सम्बद्ध करने वाले के रू में स्वीकार किया है। इसके साथ–साथ साहित्य को भी उन्होंने यहां से एक नया मोड़ दिया। इसके अलावा भारतेन्दु ने समय के साथ–साथ बदल रही विचारधाराओं के साथ हिन्दी को भी बदलने व नवीन रूप में प्रस्तुत करने को प्रयास

किया। भुक्ल जी कहते हैं कि इससे भी बड़ा काम उन्होंने ये किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और उसे वे ि ाक्षित जनता के साहचर्य में ले आये। नयी ि ाक्षा के प्रभाव से लोगों की विचारधारा बदल चली थी उनके मन में दे ाहित, समाजहित आदि की नयी उमंगे उत्पन्न हो रही थीं। काल की गति के साथ–साथ उनके भाव ओर विचार तो बहुत कुछ परिवर्तित हो चला था नये ढ़ंग के नाटक व उपन्यासों का सूत्रपात हो गया तथा उनमें दे ा व समाज के हित समसामयिक चर्चाएं आदि प्रारम्भ हो गयी थी परन्तु हिन्दी साहित्य में ऐसा अभी नहीं हो सका था वो कार्य किया भारतेन्दु ने। हिन्दी गद्य को खड़ी बोली के रूप में स्थापित कर एक नवीन भौली, सामान्य बोाल–चाल की साधारण भाशा के रूप में उसे स्थापित किया, जिससे हिन्दी भी जनता के हृदय में नवीन विचारों के पहुंचाने के लायक हुई। जनता में राजनीतिक चेतना, धार्मिक अंधवि वासों को त्यागकर एक वैज्ञानिक विचारधाराओं की चेतना, अपने राश्ट्र के प्रति राश्ट्रीयता की चेतना तथा वर्शो से गुलाम रहे भारते में तथा भारत की जनता में अपनी एक अलग अस्मिता बनाने की चेतना, सामन्तवाद व साम्राज्यवाद को जड़ से उखाड़ फेंकने की चेतना जागृति हुई जिससे भारत का एक बहुत बड़ा क्षेत्र, अपनी जातीय अस्मिता की राह पर चल पड़ा। यद्यपि इस सामाजिक व राजनीतिक चेतना को भारतेन्दु में दिखाने का प्रस्तुत करने का प्रयास भुक्ल जी ने किया परनतु डॉ0 भार्मा ने इन मामलों में (जातीय चेतना, राश्ट्रीय चेतना) भुक्ल जी से अधिक विस्तृत क्षेत्रों को स्प ि किया है। भुक्ल जी कहते है– ''जब भारतेन्दु अपनी मझी हुई परिस्कृत भाशा सामने लाये तब हिन्दी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्राकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाशा के स्वरूप का प्र न न रह गया। प्रस्तावकाल समाप्त हुआ और भाशा का स्वरूप स्थिर हुआ।''[3] भुक्ल जी ने अपने साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु व उनके युग के साहित्यकारों की प्र ांसा इसलिए भी की कि उन्होंने ि ाक्षित व गैर–ि ाक्षित जनता के मध्य गद्य के नये रूप तथा उसके माध्यम से जाने वाले भावों को बड़े मनोरंजन रूप में प्रस्तुत किया अर्थात अपने साहित्य में एक आकर्शण उत्पन्न किया जिससे हिन्दी भाशी जनता का ध्यान अपनी और आकृश्ट किया जाय और कोई भी विचार भाव यदि कुछ मनोरंजन, व्यंगात्मक, चपलता व स्वच्छन्दता लिये हुए होंगे तो स्वाभाविक है कि आम जनमानस व ि ाक्षित जनों के बीच ज्यादा तेजी से फैलेंगे। भुक्ल जी कहते है– ''ि ाक्षित समाज में संचरित भावों को भारतेन्दु के सहयोगियों ने बड़े अनुरंजनकारी रूप मे ग्रहण किया ।''[4] आचार्य भुक्ल ने भारतेन्दु व उनके युग के लेखकों में पा चात्यीकरण का झार प्रभाव नहीं देखा बल्कि भारतीय संस्कृति के प्रतिमान विविध पर्वो, ऋतुओं आदि का वर्णन करते हुए जनमानस में प्रफुल्लता लाने का प्रयास किया– '' आजकल के समान उनका जीवन दे ा के सामान्य जीवन से विच्छिन्न न था। विदे ाी अँधड़ो ने उनकी आंखों मे उतनी धूल नहीं झोंकी थी कि अपने दे ा का रूप रंग उन्हें सुझाई ही न पड़ता। काल की गति देखते थे सुधार के मार्ग भी उन्हें सूझते थे पर पि चम की एक–एक बात के अभिनय को ही वे उन्नति का पर्याय नहीं समझते थे प्राचीन और नवीन संधि स्थल पर खड़े होकर वे दोनो का जोड़ इस प्रकार मिलाना चाहते थे कि नवीन प्राचीन का प्रवर्धित रूप प्रतीत होता हेा न कि ऊपर लपेटी हुई वस्तु।''[5] अर्थात भारतेन्दु युगीन लेखकों में समय के परिवर्तन के साथ–साथ मानसिक, वैचारिक, भाशिक व अन्य निरर्थक प्राचीन अन्धवि वास आदि मूल्यों का परिवर्तन भले किया परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने अपने राश्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर पर्वो, ऋतुओं में भी परिवर्तन कर दियां उनके सोंचने समझने के ढंग बदले थे परन्तु अपनी सांस्कृतिक राश्ट्रीय ऐतिहासिक धरोहर से वो मुकरे नहीं थे। इस युग के लेखकों व भारतेन्दु में अपने राश्ट्र के प्रति अपनी संस्कृति के प्रति अटूट प्रेम व श्रद्धा थी जिसे डॉ0 भार्मा ने जातीय अस्मिता के लिए संघर्श जैसे नवीन भाब्दों

का रूप देकर बड़े ही सुन्दर ढंग से वर्णित किया है। भाुक्ल जी का मानना है कि दे ा की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थिति सम्बन्धी विशयों पर निकलने वाली भारतेन्दु युग की अनेक पत्र–पत्रिकाओं में छोटे–छोटे किन्तु अनेकों लेख देखे जा सकते है जिससे उन्होंने राश्ट्र को भाशिक, वैचारिक, सामाजिक हर दृश्टि से नवीनता का मार्ग दिखाया– ''...पत्रिकाओं में प्रकाि ात अनेक प्रकार के फुटकल लेख और निबन्ध अनेक विशयों पर मिलते है। जैसे राजनीतिक, सामाजद ाा, दे ाद ाा, ऋतुछटा, पर्व त्यौहार जीवन चरित, ऐतिहासिक प्रसंग, जगत् व जीवन के सम्बन्ध रखने वाले सामान्य विशय ...समाजद ाा और दे ाद ाा सम्बन्धी लेख कुछ विचारात्मक पर अधिकां ा भावात्मक मिलेंगे।''[6] अर्थात पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही भारतेन्दु युगीन लेखकों ने जीवन के हर क्षेत्र को स्प ा करने का प्रयास किया। भारतेन्दु ने स्वयं 'हरि चन्द्र मैगजीन' जैसी पत्रिका निकाली। भारतेन्दु को वास्तविक भारतेन्दु के रूप में डॉ0 भार्मा ने ही स्थापित किया है। इन्होंने भारतेन्दु व उनके युग को इतना व्यापक क्षेत्र प्रदान किया जिसकी आज के कुछ आलोचकों के द्वारा अंधश्रद्धा कहके अलोचना की जाने लगी हैं परनतु वास्तव में गौर से देखे तो डॉ0 भार्मा ने भारतेन्दु को जो एक हिन्दी भाशी जनता के लिए, अपनी जातीय अस्मिता के लिए, संघर्शकर्ता के रूप स्थापित किया वो पूर्णतया ठीक है जिसके कई कारण सामने आते है जो अपने राश्ट्र की जनता में राश्ट्रीयता की भावना जगा करके सामन्तवाद व सम्राज्यवाद से संघर्श करने की प्रेरण उन्होंने दी, अपने राश्ट्र की जनता में प्राचीन भावुकतावादी विचारों को त्याग कर वैज्ञानिक रूप से सोंचने, समझने तथा अंधवि वासों, कुरीतियों को त्यागने की प्रेरण उन्होंने दी, तुलसी, सूर, जायसी, जैसे महाकवियों की विविध बोलियों में रचित रचनाओं जिसमें भारतीय संस्कृति के कई भेद छिपे हुद है उनको तथा विविध जनपदीय बोलियों को एक मंच पर लाने का प्रयास उन्होंने किया तथा विविध ग़द्य विधाओं का विकास उन्होंने किया, हिन्दी भाशी जनता को राश्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राश्ट्रीय स्तर पर लाने का प्रयास उन्होंने किया और इसी विविधता को देखते हुए 1857 के बाद भारतेन्दु युग को डॉ0 भार्मा ने नवजागरण का दूसरा चरण भी कह डाला है।

भारतेन्दु पर डॉ0 भार्मा की पहली पुस्तक 'भारतेन्दु युग' 1943 में आयी। तीन वर्श बाद इसी पुस्तक का परिवर्धित संस्करण 'भारतेन्दु युग और हिन्दी भाशा की विकास परंपरा' के नाम से आयी। 1953 में उनकी एक अन्य पुस्तक 'भारतेन्दु हरि चन्द्र' और हिन्दी नवजागरण की समस्याएं' नाम से पुस्तक सामने आयी है। भारतेन्दु पर प्रकाि ात उनकी इन चार पुस्तकों में भारतेन्दु के विस्तृत व व्यापक क्षेत्र को स्प ा करने का प्रयास किया गया है। 'डॉ0 गीता भार्मा' ने भी भारतेन्दु युग को राश्ट्रीय नवजागरण से जोड़ा है। क्योंकि उनका मानना है कि विविध गद्य विधाओं का विकास भी इन्ही के समय में हुआ तथा उसी समय से कविता में ब्रजभाशा की जगह खड़ी बोली हिन्दी को स्थापित करने का प्रयास भाुरू हुआ तथा इन दोनों बातों का सम्बंध वो डॉ0 भार्मा की भांति साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के विरोध में देखती है। कुल मिलाकर राश्ट्रीय नवजागरण के रूप में– ''डॉ0 भार्मा ने भारतेन्दु हरि चन्द्र और उस युग के अन्य साहित्यकारों के मूल स्वर को राश्ट्रीय व जनवादी कहा है। साहित्य से लेकर समाज और दे ा तक सभी जगह स्वाधीनता की भावना का आरंभ इस युग की खास वि ोशता है।''[7] अर्थात भाुक्ल जी ने भारतेन्दु व उनके सहयोगियों के जिस कार्य को हिन्दी गद्य के विकास के रूप में, खड़ी बोली के विकास के रूप में देखा, डॉ0 भार्मा ने उन सबको स्वाधीनता, राश्ट्रीयता व जातीयता से जोड़कर देखा। इसके अलावा डॉ0 भार्मा भारतेन्दु को समाज सुधारक व स्वदे ाी आंदोलन के अग्रदूत के रूप में देखते है– ''वह भारतीय समाज के पुराने ढ़ांचे से संतुश्ट न होकर उसमें सुधार करना चाहते थे... वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुश्य

की एकता, समानता व भाईचारे का भी साहित्य है ... स्त्री ि ाक्षा, विधवा विवाह, विदे ा यात्रा आदि के वह समर्थक थे। इससे भी बढ़कर महत्व की बात यह थी कि भारतीय महाजनो के पुराने पे ो सूदखोरी की उन्होंने कड़ी आलोचना की थी।"[8] इन दोनों पर (भारत की रूढ़िवादिता और उपनिवे ावादी ाड़यंत्र) भारतेन्दु हरि चन्द्र ने एक साथ प्रहार किया तथा इसी प्रयास को डॉ0 भार्मा हिन्दी भाशी जनता की जातीय अस्मिता के लिए संघर्श व राश्ट्रीय चेतना जागृति करने की भावना के रूप में देखते है। आचार्य भ्ाुक्ल ने भी यद्यपि भारतेन्दु के इन कार्यो को देखा व सराहा परनतु उतने विस्तृत क्षेत्र में उनको न देख पाये जितने विस्तृत क्षेत्र में डॉ0 भार्मा ने देखा था। कुछ लोग उर्दू के विकास को हिन्दू–मूस्लिम एकता के विकास के रूप में देखते हैं परन्तु डॉ0 भार्मा इसका विरोध करते है तथा कहते है यदि ऐसा होता तो बंगाल व महाराश्ट्र के हिन्दू मुस्लिम दोनो उर्दू भाशा बोलते परन्तु इसके स्थान पर वो बंगली व मराठी भाशा का प्रयोग करते है ऐसे ही क मीर, सिंन्ध आदि स्थानों के लोग अपनी भाशा का प्रयोग करते है। डॉ0 भार्मा इसके लिए बताते है, कि तुर्की, प तों आदि बोलने वाले बाहर से आकर भारत में बसे थे वो यहां पहले से नहीं थे अतः हिन्दी भाशी जनता ने परम्परागत रूप से चली आती हुई भाशा को ही अपनाया किसी बाहरी भाशा को नही और इन्ही कई भाशाओं के प्रदे ा को हिन्दी भाशी क्षेत्र के रूप में कहा जा सकता है तथा इन्ही हिन्दी भाशी क्षेत्र को जो अनेक बोलियों में बिखरे थे की एक भाशा 'खड़ी बोली' का विकास कर भारतेन्दु ने एक बहुत बड़ा राश्ट्रीय कार्य किया। वास्तव में भारतेन्दु का काम किसी राश्ट्रीय नेता या स्वतंत्रता संग्रामी या दे ा हितैशी के काम से बहुत ऊपर है। भारतेन्दु कहते थे–''परदे ाी वस्तु ओर परदे ाी भाशा का भरोसा मत रखो। अपने दे ा में अपनी भाशा में उन्नती करो। "[9] तथा भारतेन्दु के इस हिन्दी भाशी जनता के लिये किये गये कार्य के बारे में डॉ0 गीता भार्मा कहती है– ''भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने साम्प्रदायिक दृश्टिकोण से प्रेरित होकर अथवा हिन्दू पुनरूत्थानवादी नजरियें से उर्दू का विरोध नही किया था इसके विपरीत जनपदों का अलगाव दूर होने और जातीय चेतना के विकास के साथ उन्होंने जातीय भाशा हिन्दी के निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।"[10] अर्थात भारतेन्दु ने किसी मजहबी या साम्प्रदायिक दृश्टि से उर्दू का विरोध नहीं किये इसके पीछे उनका सम्पूर्ण हिन्दी भाशी जनता को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न कार्य कर रहा था। उस समय जब भारत विभिन्न जनपदीय बोलियों उपबोलियों में बंटा हुआ था एक ऐसी बोली की आव यकता थी जो इन सबको एक सूत्र मे बांध सके और इन सबको एक सूत्र में बांधने का कार्य किया भारतेन्दु ने डॉ0 भार्मा इसी आव यकता की पूर्ति कराने के लिए भारतेन्दु को हिन्दी भाशी जनता के साथ–साथ सम्पूर्ण राश्ट्र हितैशी व नवोत्थानकर्ता के रूप में स्वीकार करते है– ''हिन्दी भाशी प्रदे ा की जनता के सांस्कृतिक भाब्दावली को अपने में समेट दे जो अपना विकास बंगला, मराठी आदि की तरह संस्कृत के सहारे करें जो उच्च भाब्दावली के लिए एकमात्र फारसी पर निर्भर न हों। डॉ0 भार्मा भारतेन्दु के पक्ष में तर्क देने के लिए सौ साल पहले ही याद दिलाते है, जब न हिन्दी में उल्लेखनीय गद्य था न पद्य था ब्रज, अबधी, बुन्देली, मैथली आदि में उच्चकोटि का साहित्य उपलब्ध थे परन्तु था तो यह हिन्दी का ही साहित्य, व्यापक अर्थ में तो ये हिन्दी का ही था परन्तु डॉ0 भार्मा कहते है कि उन अंग्रजो ने हिन्दी को किसी भी न्यायालयी, कर्यालयी, कार्यो का माध्यम नहीं बनाया अर्थात उनके अन्दर हिन्दी के प्रति द्वेश था इसीलिए उन्होंने उर्दू को इन सब का माध्यम बनाया जबकि हिन्दी भाशी जनता उर्दू भाशी जनता से मात्रा में भी अधिक थी परन्तु अंग्रेजोने उर्दू को बढ़ावा देकर हिन्दी को उर्दू भाशियों के लिए खतरा बताया तथा उनके मन में हिन्दी के प्रति द्वेश पैदा किया। इस प्रकार 'फूट डालों और राज करों' की नीति अंग्रेजो की भाशा के

क्षेत्र में भी चलती रही परन्तु ऐसे समय में भारतेंन्दु जैसे व्यक्तित्व का उदय हुआ। डॉ0 भार्मा कहते है– ''भारतेन्दु ने इनतमाम बाधाओं पर विजय पाई उन्होंने अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति हिन्दी की सेवा में लगा दी उन्होंने कविवचनसुधा, हरि चन्द्रचंद्रिका, आदि पत्रिकाएं निकाली ...उनकी प्रेरणा से अनेक केन्द्रो से नये पत्र निकलने लगे भारतेन्दु युग के लेखकों ने जनता में हिन्दी प्रेम जागृत किया बड़े ही अध्यवसाय और लगन से उन्होंने हिन्दी पद्य को संवारा और हजारों नये पाठकों तक अपना साहित्य पहुंचाया। उनकी साधना अमर है। उसी साधना के बल पर आज हिन्दी हमारी जातीय भाशा हे।''[12] डॉ0 भार्मा न सौ साल पीछे की याद क्यों दिलाई ? क्या इससे जागरूक पाठक अवगत नहीं है? है अव य हैं। परन्तु ऐसा करने से पीछे उनका उद्दे य भारतेन्दु के उस संघर्श को, उनके त्याग को, उनका हिन्दी भाशी जनता व अपनी राश्ट्र के प्रति प्रेम को प्रद ित करना था जिनके अथक प्रयासों से आज हिन्दी एक बहुत बड़े वि ाल क्षेत्र में अपना विकास कर सकी जिससे सदियों से वो वंचित रह गयी थी। अर्थात ऐसे ही आज हिन्दी वि ाल क्षेत्र में विचारों के आदान प्रदान का माध्यम नहीं बन गयी है। बल्कि इसके पीछे कोटि–कोटि संघर्श, कोटि–कोटि चेतना, कोटि–कोटि भावनाएं कार्य कर चुकी है तब वो आज इस इस मुकाम पर पहुंची है। डॉ0 भार्मा ने भारतेन्दु युग को राजभक्ति से युक्त युग माना है तथा कहते है– ''भारतेन्दु और उनके सहयोगियों के साहित्य को जो भी ध्यान से देखेगा उससे यह छिपा न रहेगा कि यद्यपि उसमें जहां–तहां राज्य भक्ति का भी पुट है। ...अनेक रचनाओं में रीतिकालीन काव्य परंपरा का भी प्रभाव है फिर भी उनकी मूल धारा राश्ट्रीय व जनवादी है। राश्ट्रीय इसलिए है कि उस युग के लेखक दे ा की स्वाधीनता चाहते थे और अंग्रेजी साम्राज्यवाद की नीति का खण्डन करते थे।'' (डॉ0 रामविलास भार्मा–भारतेन्दु युग और हिन्दी भाशा की विकास परम्परा, तीसरे संस्करण की भूमिका)। राजभक्ति के प्रसंग में आगे चलकर डॉ0 भार्मा लिखते है– ''राजभक्ति से ओत–प्रोत कविताएं उस युग में अनेक रची गयी परन्तु उनमें भी राजभक्ति के साथ–साथ दे ा द ाा की झलक दिखाई देती है। वह राजभक्ति राय बहादुरों वाली न थी कि सब दे ा सुखी है, और ब्रिटि ा राज में भारतवर्श बस नरक से स्वर्ग हो गया।''[13] निश्कर्श यह है– ''रामविलास जी मानते हैं कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राजभक्त होते हुए दे ाभक्त होना असंभव था। सवाल यह है कि क्या भारतेन्दु स्वयं भी ऐसा ही मानते थे? ''[14] पुरूशोत्तम अग्रवाल का मानना है कि डॉ0 भार्मा उस समय भारतेन्दु को दे ा भक्त के साथ राज भक्त भी मानते थे तथा कहते है– ''भारतेन्दु युग की साहित्यिक गतिविधियों को हिन्दी क्षेत्र के सांस्कृतिक नवजागरण का नाभिक निरूपित करना, इस नवजागरण का सम्बन्ध बंगाल के प्रभाव से जोड़ने का खण्डन करते हुए इसका सम्बंध 1857 के स्वाधीनता संग्राम से जोड़ना और हिन्दी नवजागरण तथा उसके बाद के साहित्य में उपलब्ध नये रहस्यवाद का स्त्रोत बंगाल को तथा आधुनिक औद्योगिकरण की विरोधी विचारधारा का स्त्रोत गुजरात को बताना। ''[15] सिद्ध करती है कि वो राजभक्त के साथ–साथ दे ा भक्त थे। इस प्रकार हम कह सकते है कि भारतेन्दु कोई एकांगी नहीं वरन् बहुमुखी प्रतिभा के युगान्तरकारी रचनाकार, भाशा प्रवर्तक, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक, दे ा हितैशी, राश्ट्रीय एकता व चेतना के मूल थे जिन्होंने न केवल अपने राश्ट्र मे व्याप्त कुरीतियों को समाप्त किया साथ ही साथ नवचेतना, नवजागृति, नवीन विचारों से सम्पूर्ण दे ा का परिचित कराकर हिन्दी भाशी जनता की जातीय अस्मिता को एक सूत्र में पिरोकर उसे अन्तर्राश्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान दिलायी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, अ ोक प्रका ान (रामचन्द्र भुक्ल), पृ0— 267

2. वही, पृ0—267

3. वही, पृ0—267

4. वही, पृ0—269

5. वही, पृ0—269

6. वही, पृ0—270

7. रामविलास भार्मा और परम्परा का मूल्यांकन (डॉ0 गीता भार्मा), पृ0—119

8. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाशा की विकास परम्परा (डॉ0 रामविलास भार्मा), पृ0 3—4

9. भारतेन्दु समग्र, पृ0—1013

10. डॉ0 रामविलास भार्मा और परम्परा का मूल्यांकन (डॉ0 गीता भार्मा), पृ0—121

11. परम्परा का मूल्यांकन (डॉ0रामविलास भार्मा) पृ0—105

12. वही, पृ0—105

13. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाशा की विकास परम्परा (डॉ0 रामविलास भार्मा) पृ0—71

14. पत्रिका, आलोचना त्रैमासिक सहस्त्राब्दी अंक—5 पृ0—102

15. वही पृ0—102